Chapter बीस

पूरु का वंश

इस अध्याय में पूरु तथा उसके वंशज दुष्मन्त का इतिहास दिया गया है। पूरु का पुत्र जनमेजय हुआ और उसका पुत्र था प्रचिन्वान। प्रचिन्वान की परम्परा में क्रमश: प्रवीर, मनुस्यु, चारुपद, सुद्यु, बहुगव, संयाति, अहंयाति तथा रौद्राश्व हुए। रौद्राश्व के दस पुत्र थे—ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयुक, जलेयु, सन्नतेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु तथा वनेयु। ऋतेयु का पुत्र रन्तिनाव था जिसके तीन पुत्र थे—सुमति, ध्रुव तथा अप्रतिरथ। अप्रतिरथ का पुत्र कण्व था और कण्व का पुत्र मेधातिथि था। मेधातिथि के प्रस्कन्न आदि सभी पुत्र ब्राह्मण थे। रन्तिनाव के पुत्र सुमति से रेभि नामक पुत्र हुआ और रेभि का पुत्र था दुष्मन्त।

एक बार जंगल में शिकार करते हुए दुष्मन्त महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचा जहाँ उसने एक सुन्दर स्त्री को देखा जिस पर वह मोहित हो गया। यह स्त्री विश्वामित्र की पुत्री थी और उसका नाम था शकुन्तला। उसकी माता मेनका थी जिसने उसे जंगल में छोड़ दिया था जहाँ कण्व मुनि को वह मिली थी। कण्व मुनि उसे अपने आश्रम में ले आये और वहाँ उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। जब शकुन्तला ने महाराज दुष्मन्त को पति रूप में स्वीकार कर लिया तो महाराज ने गन्धर्व विधि से उसके साथ विवाह कर लिया। बाद में जब शकुन्तला गर्भवती हो गई तो वे उसे कण्व मुनि के आश्रम में छोड़कर अपने राज्य में वापस चले गये।

समयानुसार शकुन्तला ने एक वैष्णव पुत्र को जन्म दिया, किन्तु दुष्मन्त अपनी राजधानी लौटकर सब कुछ भूल गये। अतएव जब शकुन्तला अपने नव-प्रसूत बालक के साथ दुष्मन्त के यहाँ गई, तो उन्होंने उसे अपनी पत्नी तथा पुत्र रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया। किन्तु बाद में एक रहस्यपूर्ण शुभ शकुन होने पर राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। दुष्मन्त की मृत्यु के बाद शकुन्तलापुत्र भरत राजगद्दी पर बैठा। उसने अनेक महा-यज्ञ किये और ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया। इस अध्याय का अन्त भरद्वाज के जन्म के वर्णन एवं महाराज भरत द्वारा उसे पुत्र रूप में अपनाये जाने के साथ होता है।

श्रीबादरायणिरुवाच

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पूरोः वंशम्—महाराज पूरु का वंश; प्रवक्ष्यामि—अब वर्णन करूँगा; यत्र—जिस वंश में; जातः असि—तुम उत्पन्न हुए हो; भारत—हे महाराज भरत के वंशज; यत्र—जिस वंश में; राज-ऋषयः—सारे राजा, जो ऋषि तुल्य थे; वंश्याः—एक के बाद एक; ब्रह्म-वंश्याः—अन्य ब्राह्मण वंश; च—भी; जज्ञिरे—निकले हैं।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज भरत के वंशज महाराज परीक्षित, अब मैं पूरु के वंश का वर्णन करूँगा जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो, जिसमें अनेक राजर्षि हुए हैं, जिनसे अनेक ब्राह्मण वंशों का प्रारम्भ हुआ है।

तात्पर्य : इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनसे हमें ज्ञात होता है कि क्षत्रियों से अनेक ब्राह्मण उत्पन्न हुए और ब्राह्मणों से अनेक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.१३) में कहा है—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—मैंने प्रकृति के तीनों गुणों तथा उनके कार्यों के अनुसार मानव समाज को चार विभागों में बाँटा है। अतएव कोई चाहे जिस कुल में जन्म ले, जब वह किसी विशेष वर्ग के लक्षणों से युक्त होता है तो उसका वर्णन उसी के अनुसार किया जाता है। *यल्लक्षणं प्रोक्तम्।* समाज के किसी वर्ण में मनुष्य का स्थान उसके लक्षणों या गुणों के अनुसार निश्चित होता है। शास्त्रों में सर्वत्र यही कथन मिलता है। जन्म तो गौण है; पहले तो मनुष्य के गुण तथा कर्म पर विचार किया जाता है।

जनमेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ।
प्रवीरोऽथ मनुस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

जनमेजयः—राजा जनमेजय; हि—निस्सन्देह; अभूत्—उत्पन्न हुआ; पूरोः—पूरु से; प्रचिन्वान्—प्रचिन्वान; तत्—उसका; सुतः—पुत्र; ततः—उससे (प्रचिन्वान से); प्रवीरः—प्रवीर; अथ—तत्पश्चात्; मनुस्युः—प्रवीर का पुत्र मनुस्यु; वै—निस्सन्देह; तस्मात्—उससे; चारुपदः—राजा चारुपद; अभवत्—हुआ।

पूरु के ही इस वंश में राजा जनमेजय उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र प्रचिन्वान था और उसका पुत्र था प्रवीर। तत्पश्चात् प्रवीर का पुत्र मनुस्यु हुआ जिसका पुत्र चारुपद था।

तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः ।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (चारुपद) का; सुद्युः—सुद्यु; अभूत्—उत्पन्न हुआ; पुत्रः—पुत्र; तस्मात्—उससे; बहुगवः—बहुगव नाम का पुत्र; ततः—उससे; संयातिः—संयाति; तस्य—तथा उसका पुत्र; अहंयातिः—अहंयाति; रौद्राश्वः—रौद्राश्व; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्मृतः—विख्यात।

चारुपद का पुत्र सुद्यु था और सुद्यु का पुत्र बहुगव था। बहुगव का पुत्र संयाति था, जिससे अहंयाति नामक पुत्र हुआ और फिर उससे रौद्राश्व उत्पन्न हुआ।

ऋतेयुस्तस्य कक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ।
जलेयुः सन्नतेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥
दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ।
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ऋतेयुः—ऋतेयु; तस्य—उसका (रौद्राश्व) का; कक्षेयुः—कक्षेयु; स्थण्डिलेयुः—स्थण्डिलेयु; कृतेयुकः—कृतेयुक; जलेयुः—जलेयु; सन्नतेयुः—सन्नतेयु; च—भी; धर्म—धर्मेयु; सत्य—सत्येयु; व्रतेयवः—तथा व्रतेयु; दश—दस; एते—ये सभी; अप्सरसः—अप्सरा से उत्पन्न; पुत्राः—पुत्र; वनेयुः—वनेयु; च—तथा; अवमः—सबसे छोटा; स्मृतः—विख्यात; घृताच्याम्—घृताची; इन्द्रियाणि इव—दस इन्द्रियों के समान; मुख्यस्य—प्राण का; जगत्-आत्मनः—सारे विश्व का प्राण।

रौद्राश्व के दस पुत्र थे जिनके नाम ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयुक, जलेयु, सन्नतेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु तथा वनेयु थे। इन दसों में वनेयु सबसे छोटा था। ये दसों पुत्र रौद्राश्व के पूर्ण नियंत्रण में उसी प्रकार कार्य करते थे जिस तरह विश्वात्मा से उत्पन्न दसों इन्द्रियाँ प्राण के नियंत्रण में कार्य करती हैं। ये सभी घृताची नामक अप्सरा से उत्पन्न हुए थे।

ऋतेयो रन्तिनावोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

ऋतेयोः—ऋतेयु से; रन्तिनावः—रन्तिनाव नामक पुत्र; अभूत्—प्रकट हुआ; त्रयः—तीन; तस्य—उसके (रन्तिनाव के); आत्मजाः—पुत्र; नृप—हे राजा; सुमतिः—सुमति; ध्रुवः—ध्रुव; अप्रतिरथः—अप्रतिरथ; कण्वः—कण्व; अप्रतिरथ-आत्मजः—अप्रतिरथ का बेटा।

ऋतेयु से रन्तिनाव नामक पुत्र हुआ जिसके तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे सुमति, ध्रुव तथा अप्रतिरथ। अप्रतिरथ के एकमात्र पुत्र का नाम कण्व था।

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कन्नाद्या द्विजातयः ।
पुत्रोऽभूत्सुमते रेभिर्दुष्मन्तस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—कण्व का; मेधातिथिः—मेधातिथि; तस्मात्—उससे; प्रस्कन्न-आद्याः—प्रस्कन्न आदि; द्विजातयः—सभी ब्राह्मण; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुए; सुमतेः—सुमति से; रेभिः—रेभि; दुष्मन्तः—महाराज दुष्मन्त; तत्-सुतः—रेभि का पुत्र; मतः—विख्यात है।

कण्व का पुत्र मेधातिथि था जिसके सारे पुत्र ब्राह्मण थे और उनमें प्रमुख प्रस्कन्न था। रन्तिनाव का पुत्र सुमति, सुमति का पुत्र रेभि और रेभि का पुत्र था महाराज दुष्मन्त।

दुष्मन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ।
तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ ८ ॥
विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

दुष्मन्तः—महाराज दुष्मन्त; मृगयाम् यातः—शिकार करने के लिए गया हुआ; कण्व-आश्रम-पदम्—कण्व के आश्रम में; गतः—आया; तत्र—वहाँ; आसीनाम्—बैठी हुई; स्व-प्रभया—अपने सौन्दर्य से; मण्डयन्तीम्—प्रकाशित करती हुई; रमाम् इव—लक्ष्मी जी की तरह; विलोक्य—देखकर; सद्यः—तुरन्त; मुमुहे—मोहित हो गया; देव-मायाम् इव—भगवान् की माया के सदृश; स्त्रियम्—सुन्दर स्त्री को; बभाषे—सम्बोधित किया; ताम्—उसको; वर-आरोहाम्—सुन्दर स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ; भटैः—सैनिकों द्वारा; कतिपयैः—कुछ; वृतः—घिरा हुआ।

एक बार जब राजा दुष्मन्त शिकार करने जंगल गया और अत्यधिक थक गया तो वह महाराज कण्व के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री देखी जो लक्ष्मी जी के समान लग रही थी और वहाँ अपने तेज से सारे आश्रम को प्रकाशित करती हुई बैठी थी। स्वभावतः राजा उसके सौन्दर्य से आकृष्ट हो गया अतएव वह अपने कुछ सैनिकों के साथ उसके पास गया और उससे बोला।

तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ।
पप्रच्छ कामसन्तप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्-दर्शन-प्रमुदितः—सुन्दर स्त्री को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित; सन्निवृत्त-परिश्रमः—शिकार करने की थकान से निवृत्त होकर; पप्रच्छ—उससे पूछा; काम-सन्तप्तः—कामेच्छाओं से उद्विग्न होकर; प्रहसन्—हँसी करते हुए; श्लक्ष्णया—सुन्दर तथा सुहावने; गिरा—शब्दों से।

उस सुन्दर स्त्री को देखकर राजा अत्यधिक हर्षित हुआ और शिकार-भ्रमण से उत्पन्न उसकी सारी थकावट जाती रही। वह निस्सन्देह कामेच्छाओं के कारण अत्यधिक आकृष्ट था अतएव उसने हँसी-हँसी में उससे इस प्रकार पूछा।

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे ।
किं स्विच्चिकीर्षितं तत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम हो; कमल-पत्र-अक्षि—हे कमलनेत्री; कस्य असि—तुम किससे सम्बन्धित हो; हृदयम्-गमे—हृदय को सुहावनी लगने वाली अतीव सुन्दरी; किम् स्वित्—कौन सा काम; चिकीर्षितम्—सोच रही हो; तत्र—वहाँ; भवत्याः—तुम्हारे द्वारा; निर्जने—एकान्त; वने—वन में।

हे सुन्दर कमल नयनों वाली, तुम कौन हो? तुम किसकी पुत्री हो? इस एकान्त वन में तुम्हारा क्या कार्य है? तुम यहाँ क्यों रह रही हो?

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

व्यक्तम्—ऐसा लगता है; राजन्य-तनयाम्—क्षत्रिय की पुत्री; वेद्मि—अनुभव कर सकता हूँ; अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; सु-मध्यमे—हे अतीव सुन्दरी; न—नहीं; हि—निश्चय ही; चेतः—मन; पौरवाणाम्—पूरुवंशी लोगों का; अधर्मे—अधर्म में; रमते—भोग करता है; क्वचित्—कभी भी।

हे अतीव सुन्दरी, मुझे ऐसा लगता है कि तुम किसी क्षत्रिय की पुत्री हो। चूँकि मैं पूरुवंशी हूँ अतएव मेरा मन कभी भी अधार्मिक रीति से किसी वस्तु का भोग करने की चेष्टा नहीं करता।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त ने अप्रत्यक्ष रूप से शकुन्तला से विवाह करने की अपनी इच्छा व्यक्त की क्योंकि उसे लगा कि शकुन्तला किसी क्षत्रिय राजा की पुत्री है।

श्रीशकुन्तलोवाच
विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ।
वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शकुन्तला उवाच—श्री शकुन्तला ने कहा; विश्वामित्र-आत्मजा—विश्वामित्र की पुत्री; एव—निस्सन्देह; अहम्—मैं (हूँ); त्यक्ता—छोड़ी गई; मेनकया—मेनका द्वारा; वने—वन में; वेद—जानता है; एतत्—इन सारी घटनाओं को; भगवान्—शक्तिशाली ऋषि; कण्वः—कण्व मुनि; वीर—हे वीर; किम्—क्या; करवाम—कर सकती हूँ; ते—तुम्हारे लिए।

शकुन्तला ने कहा : मैं विश्वामित्र की पुत्री हूँ। मेरी माता मेनका ने मुझे जंगल में छोड़ दिया था। हे वीर, अत्यन्त शक्तिशाली सन्त कण्व मुनि इसके विषय में सब कुछ जानते हैं। अब आप कहिए कि मैं आपकी किस तरह सेवा करूँ?

तात्पर्य : शकुन्तला ने महाराज दुष्मन्त को बतलाया कि यद्यपि उसने अपने पिता या माता को न तो

कभी देखा है, न उनके विषय में वह कुछ जानती है लेकिन कण्व मुनि उसके विषय में पूरी तरह जानते हैं। उसने उन्हीं से जाना है कि वह विश्वामित्र की पुत्री है और मेनका उसकी माता है जिसने उसे जंगल में छोड़ दिया था।

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १४॥

शब्दार्थ

आस्यताम्—कृपया यहाँ बैठें; हि—निस्सन्देह; अरविन्द-अक्ष—कमल जैसे नेत्रों वाले वीर; गृह्यताम्—स्वीकार करें; अर्हणम्—आतिथ्य; च—तथा; नः—हमारा; भुज्यताम्—कृपया भोजन करें; सन्ति—जो कुछ है; नीवाराः—नीवार चावल; उष्यताम्—यहाँ पर रुकें; यदि—यदि; रोचते—आपको अच्छा लगे।

हे कमल जैसे नेत्रों वाले राजा, कृपया बैठ जायें और हमारे यथासम्भव आतिथ्य को स्वीकार करें। हमारे पास नीवार चावल हैं जिन्हें आप ग्रहण कर सकते हैं और यदि आप चाहें तो बिना किसी हिचक के यहाँ रुक सकते हैं।

श्रीदुष्मन्त उवाच
उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ।
स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्री-दुष्मन्तः उवाच—राजा दुष्मन्त ने कहा; उपपन्नम्—तुम्हारी स्थिति के अनुरूप; इदम्—यह; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौहों वाली शकुन्तला; जातायाः—अपने जन्म के कारण; कुशिक-अन्वये—विश्वामित्र के कुल में; स्वयम्—स्वयं; हि—निस्सन्देह; वृणुते—चुनती हैं; राज्ञाम्—राज परिवार की; कन्यकाः—लड़कियाँ; सदृशम्—समान स्तर के; वरम्—पति को।

राजा दुष्मन्त ने उत्तर दिया: हे सुन्दर भौहों वाली शकुन्तला, तुमने महर्षि विश्वामित्र के कुल में जन्म लिया है और तुम्हारा आतिथ्य तुम्हारे कुल के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त राजा की कन्याएँ सामान्यतया अपना वर स्वयं चुनती हैं।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त का स्वागत करते हुए शुकन्तला ने स्पष्ट कहा, ''आप यहाँ रुक सकते हैं और हमारा यथासम्भव आतिथ्य ग्रहण कर सकते हैं।'' इस तरह उसने इंगित कर दिया कि वह महाराज दुष्मन्त को पति रूप में चाहती है। जहाँ तक दुष्मन्त की बात थी, वह तो प्रारम्भ से ही, जब से उसने देखा था, शकुन्तला को पत्नी के रूप में चाह रहा था; अतएव पति-पत्नी के रूप में मिलने की स्वीकृति स्वाभाविक थी। शकुन्तला को विवाह के लिए प्रोत्साहित करने के लिए ही महाराज दुष्मन्त ने उसे स्मरण कराया कि

राजकन्या के नाते उसे अपना वर खुली सभा में चुनना चाहिए (स्वयंवर)। आर्य सभ्यता के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें सुप्रसिद्ध राजकुमारियों ने स्वयंवर द्वारा पति का चुनाव किया है। उदाहरणार्थ, सीतादेवी ने रामचन्द्र जी को ऐसी ही प्रतियोगिता में, पति रूप में चुना और द्रौपदी ने अर्जुन को चुना था। ऐसे और बहुत से उदाहरण हैं। अतएव सहमति से या खुली प्रतियोगिता में अपना वर चुनने की छूट थी। विवाह आठ प्रकार के होते हैं जिनमें पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह करना *गान्धर्व* विवाह कहलाता है। सामान्यतया माता-पिता अपने पुत्र-पुत्री के लिए वर-कन्या का चुनाव करते हैं परन्तु गंधर्व-विवाह स्वयंवर से होता है। यद्यपि भूतकाल में स्वयंवर द्वारा या सहमति से विवाह होते थे, किन्तु विवाह-विच्छेद जैसी वस्तु नहीं पाई जाती थी। निस्सन्देह, निम्न जातियों में असहमति होने पर विवाह-विच्छेद होता था, किन्तु सहमति से विवाह की प्रथा उच्चतम जातियों में भी थी, और राजसी क्षत्रिय परिवारों में यह विशेष रूप से प्रचलित थी। महाराज दुष्मन्त द्वारा शकुन्तला को पत्नी रूप में ग्रहण करना वैदिक संस्कृति के अनुरूप था। यह विवाह जिस रूप में हुआ उसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ।
गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ओम् इति उक्ते—वैदिक प्रणव का उच्चारण करके भगवान् को विवाह के साक्षी के रूप में आह्वान करते हुए; यथा-धर्मम्—धार्मिक नियमों के अनुकूल (क्योंकि सामान्य धार्मिक विवाहों में भी नारायण साक्षी बनते है); उपयेमे—विवाह कर लिया; शकुन्तलाम्—शकुन्तला से; गान्धर्व-विधिना—गान्धर्व विधि से, धार्मिक नियमानुसार; राजा—महाराज दुष्मन्त ने; देश-काल-विधान-वित्—समय, स्थान तथा लक्ष्य के अनुसार कर्तव्यों से पूर्णतया अवगत।.

जब शकुन्तला महाराज दुष्मन्त के प्रस्ताव पर मौन रही तो सहमति पूर्ण हो गई। तब विवाह के नियमों को जानने वाले राजा ने तुरन्त ही वैदिक प्रणव (ओङ्कार) का उच्चारण किया, जैसा कि गन्धर्वों में विवाह के अवसर पर किया जाता है।

तात्पर्य : ओङ्कार या प्रणव भगवान् का शब्द रूप है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि अ, उ, म ये तीन अक्षर मिलकर ओम् द्वारा भगवान् का प्रतिनिधित्व करते हैं। धार्मिक सिद्धान्तों का अभिप्राय भगवान् कृष्ण के आशीर्वाद तथा अनुग्रह का आह्वान करना है क्योंकि *भगवद्गीता* में कृष्ण स्वयं कहते हैं कि जो कामेच्छाएँ धर्म के विरुद्ध नहीं हैं, उनमें वे स्वयं उपस्थित रहते हैं। *विधिना* शब्द का अर्थ ''धार्मिक

सिद्धान्तों के अनुसार।'' वैदिक संस्कृति में धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार स्त्री तथा पुरुष के संयोग की अनुमति है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार विवाह करने की अनुमति प्रदान करते हैं, किन्तु मित्रों के रूप में स्त्रियाँ तथा पुरुषों का यौन संयोग अधार्मिक है और इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

अमोघ-वीर्यः—ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य व्यर्थ नहीं बहता अर्थात् जिसके वीर्य से सन्तान उत्पन्न होती है; राज-ऋषिः—साधु प्रकृति वाला राजा दुष्मन्त; महिष्याम्—रानी शकुन्तला में (विवाह के बाद वह रानी हो गई); वीर्यम्—वीर्य; आदधे—स्थापित किया; श्वः-भूते—सबेरा होने पर; स्व-पुरम्—अपने स्थान को; यातः—चला गया; कालेन—समय पर; असूत—जन्म दिया; सा—उसने (शकुन्तला) ने; सुतम्—पुत्र को।.

अमोघवीर्य राजा दुष्मन्त ने रात्रि में अपनी रानी शकुन्तला के गर्भ में वीर्य स्थापित किया और प्रातः होते ही अपने महल को लौट गया। तत्पश्चात् समयानुसार शकुन्तला ने एक पुत्र को जन्म दिया।

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ।
बद्ध्वा मृगेन्द्रं तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८॥

शब्दार्थ

कण्वः—कण्व मुनि ने; कुमारस्य—शकुन्तला से उत्पन्न बालक का; वने—जंगल में; चक्रे—सम्पन्न किया; समुचिताः—विहित; क्रियाः—संस्कार; बद्ध्वा—पकड़ कर; मृग-इन्द्रम्—शेर को; तरसा—बलपूर्वक; क्रीडति—खेलता; स्म—था; सः—वह; बालकः—बालक।.

कण्व मुनि ने वन में नवजात शिशु के सारे संस्कार सम्पन्न किये। बाद में यह बालक इतना बलवान बन गया कि वह किसी सिंह को पकड़ कर उसके साथ खेलता था।

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १९॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; दुरत्यय-विक्रान्तम्—जिसकी शक्ति को दबाया नहीं जा सकता था; आदाय—अपने साथ लेकर; प्रमदा-उत्तमा—स्त्रियों में श्रेष्ठ शकुन्तला; हरेः—ईश्वर का; अंश-अंश-सम्भूतम्—अंशावतार; भर्तुः अन्तिकम्—अपने पति के पास; आगमत्—गई।.

सुन्दरियों में श्रेष्ठ शकुन्तला अपने पुत्र को, जो दुर्दमनीय था तथा भगवान् का अंशावतार था, अपने साथ लेकर अपने पति दुष्मन्त के पास गई।

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; न—नहीं; जगृहे—स्वीकार किया; राजा—राजा ने; भार्या-पुत्रौ—अपनी असली स्त्री तथा असली पुत्र को; अनिन्दितौ—जो निर्दोष थे, अनिन्दित; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व-भूतानाम्—सारे लोगों के; खे—आकाश में; वाक्—शब्द ध्वनि ने; आह—घोषणा की; अशरीरिणी—शरीरविहीन।

जब राजा ने अपनी निर्दोष पत्नी तथा पुत्र दोनों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया तो आकाश से शकुन के रूप में एक अदृश्य आवाज सुनाई दी जिसे वहाँ उपस्थित सबों ने सुना।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त जानते थे कि शकुन्तला उनकी पत्नी और छोटा बालक उनका पुत्र है, किन्तु बाहर से आने और प्रजा को ज्ञान न होने से, दुष्मन्त ने उन्हे पहले स्वीकार नहीं किया। किन्तु शकुन्तला इतनी सती थी कि आकाशवाणी ने सारी सचाई बतला दी जिसे दूसरे लोग सुन सके। जब सब लोगों को पता चल गया कि शकुन्तला तथा उसका पुत्र राजा के ही पत्नी एवं पुत्र हैं तो राजा ने बाद में उन्हें स्वीकार कर लिया।

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ।
भरस्व पुत्रं दुष्मन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

माता—माता; भस्त्रा—धौंकनी की तरह; पितुः—पिता का; पुत्रः—पुत्र; येन—जिसके द्वारा; जातः—उत्पन्न; सः—पिता; एव—निश्चित; सः—पुत्र; भरस्व—पालो; पुत्रम्—अपने पुत्र को; दुष्मन्त—हे महाराज दुष्मन्त; मा—मत; अवमंस्थाः—अपमानित करो; शकुन्तलाम्—शकुन्तला को।

आकाशवाणी ने कहाः हे महाराज दुष्मन्त, पुत्र वास्तव में अपने पिता का ही होता है जब कि माता मात्र चमड़े की धौंकनी के समान धारक होती है। वैदिक आदेशानुसार पिता पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। अतएव तुम अपने पुत्र का पालन करो और शकुन्तला का अपमान न करो।

तात्पर्य : वैदिक आदेशों के अनुसार *आत्मा वै पुत्र नामासि*—पिता ही पुत्र बनता है। माता तो मात्र संग्राहक है क्योंकि वह वीर्य को गर्भ में धारण करती है, किन्तु पिता ही सन्तान के पालन-पोषण के लिए उत्तरदायी होता है। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि वे सारे जीवों के वीर्यदाता पिता हैं (*अहं बीजप्रदः पिता*) इसीलिए वे उनके पालन-पोषण के लिए उत्तरदायी हैं। वेदों से भी इसकी पुष्टि होती है। *एको बहूनां*

यो विदधाति कामान्—यद्यपि ईश्वर एक है, किन्तु वह सारे जीवों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला है। सारे जीव विविध रूपों में भगवान् के पुत्र हैं अतएव पिता के रूप में वे उन्हें विभिन्न शरीरों के अनुसार भोजन प्रदान करते हैं। चींटी को चीनी का एक कण प्रदान किया जाता है और हाथी को प्रभूत भोजन दिया जाता है, किन्तु हर एक जीव को खाने के लिए भोजन मिलता है। अतएव अधिक जनसंख्या कोई प्रश्न नहीं। चूँकि हमारे पिता कृष्ण पूर्णत: ऐश्वर्यवान हैं इसलिए भोजन के अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता और जब भोजन का अभाव नहीं है तो अधिक जनसंख्या का जो प्रचार हो रहा है वह मिथ्या है। वास्तव में किसी को भोजन की कमी तब होती है जब पिता के आदेश से प्रकृति भोजन देना बन्द कर देती है। जीव की स्थिति के अनुसार ही यह बात तय की जाती है कि भोजन मिलेगा या नहीं। जब किसी रोगी व्यक्ति को खाने से मना किया जाता है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि भोजन की कमी है अपितु रोगी को भोजन न देना ही रोग का उपचार होता है। *भगवद्गीता* (७.१०) में भी भगवान् कहते हैं—*बीजं मां सर्वभूतानाम्*—मैं सारे जीवों का बीज हूँ। जब कोई विशेष बीज पृथ्वी में बोया जाता है तो एक विशेष प्रकार का वृक्ष या पौंधा निकलता है। माता पृथ्वी के तुल्य है और जब पिता द्वारा एक विशेष तरह का बीज बो दिया जाता है तो एक विशेष प्रकार का शरीर जन्म लेता है।

रेतोधा: पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २२॥

शब्दार्थ

रेत:-धा:—वीर्य स्थापित करने वाला पुरुष; पुत्र:—पुत्र; नयति—बचाता है; नर-देव—हे राजा; यम-क्षयात्—यमराज के दण्ड से; त्वम्—तुम; च—तथा; अस्य—इस बालक का; धाता—स्रष्टा; गर्भस्य—गर्भ का; सत्यम्—सत्य; आह—कहा; शकुन्तला—तुम्हारी पत्नी शकुन्तला ने।

हे राजा दुष्मन्त, वीर्य स्थापित करने वाला ही असली पिता है और उसका पुत्र उसे यमराज के चंगुल से छुड़ाता है। आप इस बालक के असली स्रष्टा (जन्मदाता) हैं। शकुन्तला निस्सन्देह सत्य कह रही है।

तात्पर्य : आकाशवाणी सुनकर महाराज दुष्मन्त ने अपनी पत्नी तथा पुत्र को स्वीकार कर लिया। वैदिक स्मृति के अनुसार—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुत: ।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

अपने पिता को *पुत्* नामक नरक के दण्ड से बचाने के कारण पुत्र पुत्र कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब भी पिता तथा माता में कोई विरोध होता है तो पुत्र द्वारा, माता का नहीं, अपितु पिता का उद्धार होता है। किन्तु यदि पत्नी अपने पति की आज्ञाकारिणी हो तो पिता का उद्धार हो जाने पर माता का भी उद्धार हो जाता है। अतएव वैदिक साहित्य में विवाह-विच्छेद का नामोनिशान नहीं है। पत्नी को सदैव सती तथा पति की आज्ञाकारिणी बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है क्योंकि इससे किसी भी अत्यन्त दुरावस्था में उसका उद्धार हो जाता है। यह श्लोक स्पष्ट कहता है—*पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात्*—पुत्र अपने पिता को यमराज के चंगुल से बचाता है। इसमें यह नहीं कहा गया—*पुत्रो नयति मातरम्*—पुत्र अपनी माता को बचाता है। बीजप्रदाता पिता का उद्धार होता है, संग्राहक माता का नहीं। अतएव पति-पत्नी को किसी भी परिस्थिति में विलग नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि उनसे सन्तान हो जिसे वे वैष्णव बना सकें तो वह माता-पिता दोनों को यमराज के चंगुल से छुड़ा सकता है और नारकीय जीवन के दण्ड से उबार सकता है।

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २३॥

शब्दार्थ

पितरि—अपने पिता के; उपरते—दिवगंत हो जाने पर; सः—वह राजपुत्र; अपि—भी; चक्रवर्ती—सम्राट; महा-यशाः—अत्यन्त विख्यात; महिमा—यश; गीयते—गाया जाता है; तस्य—उसका; हरेः—भगवान् का; अंश-भुवः—अंश रूप; भुवि—पृथ्वी पर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब महाराज दुष्मन्त इस पृथ्वी से चले गये तो उनका पुत्र सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती राजा बना। वह इस संसार में भगवान् का अंशावतार बतलाया जाता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१०.४१) में कहा गया है—

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमद् ऊर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशंसम्भवम्॥

जो कोई अद्वितीय शक्तिशाली होता है उसे भगवान् के ऐश्वर्य का अंश रूप मानना चाहिए। अतएव जब महाराज दुष्मन्त का पुत्र सारे विश्व का सम्राट बन गया तो वह इसी तरह विख्यात हुआ।

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ।
पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ २४॥
मामतेयं पुरोधाय यमुनामनु च प्रभुः ।
अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु ॥ २५॥
भरतस्य हि दौष्मन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ।
सहस्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २६॥

शब्दार्थ

चक्रम्—कृष्ण-चक्र का चिह्न; दक्षिण-हस्ते—दाहिने हाथ में; अस्य—उसके (भरत) के; पद्म-कोशः—कमल गुच्छ का चिह्न; अस्य—उसके; पादयोः—पैरों के तलवों पर; ईजे—भगवान् की पूजा की; महा-अभिषेकेण—विशाल वैदिक अनुष्ठान द्वारा; सः—वह (भरत); अभिषिक्तः—पदोन्नत किया गया; अधिराट्—शासक के सर्वोच्च पद पर; विभुः—स्वामी; पञ्च-पञ्चाशता—पचपन; मेध्यैः—यज्ञों के लिए उपयुक्त; गङ्गायाम् अनु—स्रोत से लेकर गंगा के मुहाने तक; वाजिभिः—घोड़ों से; मामतेयम्—भृगु मुनि को; पुरोधाय—पुरोहित बनाकर; यमुनाम्—यमुना तट पर; अनु—क्रमबद्ध; च—भी; प्रभुः—स्वामी, महाराज भरत; अष्ट-सप्तति—अठहत्तर; मेध्य-अश्वान्—यज्ञ के योग्य घोड़ों को; बबन्ध—बाँधा; प्रददत्—दान में दिया; वसु—धन; भरतस्य—भरत का; हि—निस्सन्देह; दौष्मन्तेः—महाराज दुष्मन्त के पुत्र; अग्निः—यज्ञ की आग; साची-गुणे—सर्वोत्तम स्थान पर; चितः—स्थापित; सहस्रम्—एक हजार; बद्वशः—एक बद्व जो १३०८४ के तुल्य है; यस्मिन्—जिन यज्ञों में; ब्राह्मणाः—सारे उपस्थित ब्राह्मण; गाः—गाएँ; विभेजिरे—अपना अपना भाग प्राप्त किया।

दुष्मन्त-पुत्र महाराज भरत के दाहिने हाथ की हथेली पर भगवान् कृष्ण के चक्र का चिन्ह था और उसके पैरों के तलवों में कमल कोश का चिन्ह था। वह महान् अनुष्ठान के द्वारा भगवान् की पूजा करके सारे विश्व का अधिपति तथा सम्राट बन गया। तब उसने मामतेय अर्थात् भृगु मुनि के पौरोहित्य में गंगा नदी के तट पर गंगा के अंतिम स्थान से लेकर उद्गम तक पचपन अश्वमेध यज्ञ किये। इसी तरह यमुना नदी के तट पर प्रयागराज के संगम से लेकर उद्गम स्थान तक अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये। उसने सर्वोत्तम स्थान पर यज्ञ की अग्नि स्थापित की और अपनी विपुल सम्पत्ति ब्राह्मणों में वितरित कर दी। उसने इतनी गाएँ दान में दीं कि हजारों ब्राह्मणों में से हर एक को एक बद्व (१३०८४) गाएँ अपने हिस्से में मिलीं।

तात्पर्य : जैसा कि *दौष्मन्तेरग्निः साचीगुणे चितः* शब्दों से सूचित होता है दुष्मन्त कुमार भरत ने सारे विश्व में, विशेष रूप से भारत भर में गंगा तथा यमुना नदी के किनारों पर, अन्त से लेकर उद्गम तक अनेक अनुष्ठान किये और ये सारे यज्ञ अत्यन्त प्रसिद्ध स्थानों में सम्पन्न किये गये। जैसा कि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के यज्ञ रूप में किया गया कर्म करना चाहिए अन्यथा यह कर्म मनुष्य को इस भौतिक संसार से बाँध देता है। हर व्यक्ति को यज्ञ करना चाहिए

और यज्ञ-अग्नि सर्वत्र जलाई जानी चाहिए। इसका एकमात्र अभिप्राय लोगों को सुखी, समृद्ध तथा आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर बनाना है। निस्सन्देह, ये सारी बातें कलियुग आने के पूर्व सम्भव थीं क्योंकि ऐसे यज्ञों को सम्पन्न करने वाले योग्य ब्राह्मण उपलब्ध थे। किन्तु वर्तमान समय के लिए *ब्रह्मवैवर्त पुराण* का आदेश है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोप्तत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

''इस कलियुग में पाँच कार्यों की मनाही है—यज्ञ में घोड़े की बलि, यज्ञ में गाय की बलि, संन्यास आश्रम ग्रहण करना, पितरों को मांस का तर्पण तथा भाई की पत्नी से पुत्र उत्पन्न करना।'' इस युग में अश्वमेध यज्ञ तथा गोमेध यज्ञ कर पाना असम्भव है क्योंकि न तो पर्याप्त धन है न योग्य ब्राह्मण हैं। इस श्लोक में *मामतेयं पुरोधाय*—अर्थात् महाराज भरत ने ममतापुत्र भृगु मुनि को इस यज्ञ को सम्पन्न कराने का भार सौंपा था। किन्तु अब ऐसे ब्राह्मणों को खोज पाना असम्भव है। अतएव शास्त्रों का अनुमोदन है—*यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करें।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।

यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

''इस कलियुग में जो लोग काफी बुद्धिमान हैं वे भगवान् की पूजा उनके पार्षदों सहित संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करके करेंगे।'' (*भागवत* ११.५.३२) यज्ञ तो सम्पन्न होने ही चाहिए अन्यथा लोग पापकर्मों में फँसकर काफी कष्ट भोगेंगे। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने विश्व भर में हरे कृष्ण कीर्तन का प्रचार करने का बीड़ा उठाया है। यह हरे कृष्ण आन्दोलन भी यज्ञ है, किन्तु इसमें साज-सामग्री तथा योग्य ब्राह्मण जुटाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। यह सामूहिक कीर्तन कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है। यदि किसी तरह लोग एकत्र हो जायें और उन्हें 'हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया जा सके तो यज्ञ का सारा प्रयोजन पूरा हो जाएगा। यज्ञ का पहला प्रयोजन है कि प्रचुर वर्षा हो अन्यथा पर्याप्त अन्न उत्पन्न नहीं होगा (*अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भवः*)। हमारी सारी आवश्यक वस्तुएँ एकमात्र

वर्षा से उत्पन्न हो सकती हैं (*कामं ववर्ष पर्जन्य:*) और धरती सभी आवश्यकताओं का मूल स्रोत है (*सर्वकामदुघामही*)। अतएव निष्कर्ष यह है कि इस कलियुग में विश्व भर के लोगों को जीवन के चार पापों से बचना चाहिए—ये हैं अवैध यौन-सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा द्यूत क्रीड़ा। उन्हें शुद्ध अवस्था में हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन का सरल यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए। तब पृथ्वी से जीवन की सारी आवश्यकताएँ उत्पन्न हो सकेंगी और सारे लोग आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सुखी होंगे। तब सारी वस्तुएँ स्वयमेव व्यवस्थित हो जायेंगी।

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्ध्वा विस्मापयन्नृपान् ।
दौष्मन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्रय:—तीन; त्रिंशत्—तीस; शतम्—सौ; हि—निस्सन्देह; अश्वान्—घोड़ों को; बद्ध्वा—यज्ञ में बन्दी करके; विस्मापयन्—आश्चर्यचकित करते हुए; नृपान्—सारे राजाओं को; दौष्मन्ति:—महाराज दुष्मन्त का पुत्र; अत्यगात्—बाजी मार ले गया; मायाम्—भौतिक ऐश्वर्य को; देवानाम्—देवताओं का; गुरुम्—गुरु; आययौ—प्राप्त किया।

महाराज दुष्मन्त के पुत्र भरत ने उन यज्ञों के लिए ३३०० घोड़े बाँधकर अन्य सारे राजाओं को विस्मय में डाल दिया। उसने देवताओं के ऐश्वर्य को भी मात कर दिया क्योंकि उसे परम गुरु हरि प्राप्त हो गये थे।

तात्पर्य : जिसे भगवान् के चरणारविन्द प्राप्त हो जाते हैं वह स्वर्गलोक के देवताओं के ऐश्वर्य से भी आगे बढ़ जाता है। *यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:।* भगवान् के चरणकमलों की प्राप्ति जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मृगाञ्छुक्लदत: कृष्णान्हिरण्येन परीवृतान् ।
अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २८॥

शब्दार्थ

मृगान्—उत्तम कोटि के हाथियों; शुक्ल-दत:—सफेद दाँत वाले; कृष्णान्—काले शरीर वाले; हिरण्येन—सोने के आभूषणों से युक्त; परीवृतान्—पूरी तरह ढके; अदात्—दान में दिया; कर्मणि—यज्ञ में; मष्णारे—मष्णार नामक यज्ञ अथवा मष्णार नामक स्थान में; नियुतानि—लाख; चतुर्दश—चौदह।

जब महाराज भरत ने मष्णार नामक यज्ञ (या मष्णार नामक स्थान में यज्ञ) सम्पन्न किया तो उन्होंने दान में चौदह लाख श्रेष्ठ हाथी दिये जिनके दाँत सफेद थे और शरीर काले थे जो सुनहरे

आभूषणों से ढके थे।

भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

भरतस्य—महाराज भरत का; महत्—महान; कर्म—कार्य; न—न तो; पूर्वे—इसके पहले; न—न तो; अपरे—उसके बाद; नृपाः—राजागण; न—न तो; एव—निश्चय ही; आपुः—प्राप्त किया; न—न तो; एव—निश्चय ही; प्राप्स्यन्ति—पायेंगे; बाहुभ्याम्—अपने बाहुबल से; त्रि-दिवम्—स्वर्ग को; यथा—जिस तरह।

जिस तरह कोई व्यक्ति मात्र अपने बाहुबल से स्वर्ग नहीं पहुँच सकता (क्योंकि अपने बाहुओं से कोई स्वर्ग को कैसे छू सकता है?) उसी तरह कोई व्यक्ति महाराज भरत के अद्भुत कार्यों का अनुकरण नहीं कर सकता। कोई न तो भूतकाल में ऐसे कार्य कर सका है, न ही भविष्य में कोई ऐसा कर सकेगा।

किरातहूणान्यवनान्पौण्ड्रान्कङ्कान्खशाञ्छकान् ।
अब्रह्मण्यनृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

किरात—काले काले लोग, जो किरात कहलाते थे (अधिकांशतः अफ्रीकी); हूणान्—दूर उत्तर की जातियों, हूणों; यवनान्—मांसाहारियों; पौण्ड्रान्—पौण्ड्र; कङ्कान्—कंकों; खशान्—मंगोलों; शकान्—शकों; अब्रह्मण्य—ब्राह्मण संस्कृति के विरोधी; नृपान्—राजाओं को; च—तथा; अहन्—उसने मार डाला; म्लेच्छान्—ऐसे नास्तिकों को जिन्हें वैदिक सभ्यता के प्रति कोई आदर नहीं था; दिक्-विजये—दिशाओं को जीतते समय; अखिलान्—समस्त।

जब भरत महाराज दौरे पर थे तो उन्होंने सारे किरातों, हूणों, यवनों, पौण्ड्रों, कंकों, खशों, शकों तथा ब्राह्मण संस्कृति के वैदिक नियमों के विरोधी राजाओं को परास्त किया या मार डाला।

जित्वा पुरासुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

जित्वा—जीतकर; पुरा—प्राचीन काल में; असुराः—असुरगण; देवान्—देवताओं को; ये—जो; रस-ओकांसि—रसातल लोक में; भेजिरे—शरण ग्रहण की; देव-स्त्रियः—देवताओं की स्त्रियाँ तथा कन्याएँ; रसाम्—अधोलोक में; नीताः—लाई गई; प्राणिभिः—अपने प्रिय संगियों समेत; पुनः—फिर; आहरत्—उनके पूर्व स्थानों में पहुँचा दिया।

प्राचीन काल में सारे असुरों ने देवताओं को जीतकर रसातल नामक अधोलोक में शरण ले रखी थी और वे सारे देवताओं की स्त्रियों एवं कन्याओं को भी वहीं ले आये थे। किन्तु भरत महाराज ने

इन सभी स्त्रियों को उनके संगियों समेत असुरों के चुंगल से छुड़ाया और उन्हें देवताओं को वापस कर दिया।

सर्वान्कामान्दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ।
समास्त्रिणवसाहस्त्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सर्वान् कामान्—सारी आवश्यकताओं या इच्छित वस्तुओं को; दुदुहतुः—पूरा किया; प्रजानाम्—प्रजा की; तस्य—उसकी; रोदसी—यह पृथ्वी तथा स्वर्गलोक; समाः—वर्ष; त्रि-नव-साहस्त्रीः—नौ हजार के तीन गुने (२७ हजार); दिक्षु—सारी दिशाओं में; चक्रम्—सैनिक या आदेश; अवर्तयत्—बँटवा दिया।

महाराज भरत ने २७ हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर तथा स्वर्गलोकों में अपनी प्रजा की सारी आवश्यकताएँ पूरी कीं। उन्होंने सभी दिशाओं में अपने आदेश प्रसारित कर दिए और अपने सैनिक तैनात कर दिए।

स संराड्लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् ।
चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (महाराज भरत); संराट्—सम्राट; लोक-पाल-आख्यम्—समस्त लोकों के शासक के रूप में; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; अधिराट्—पूरी तरह अधिकार में; श्रियम्—राज्य; चक्रम्—सैनिक या आदेश; च—तथा; अस्खलितम्—बिना चूके; प्राणान्—जीवन अथवा पुत्र तथा परिवार को; मृषा—मिथ्या; इति—इस प्रकार; उपरराम—भोग करना बन्द कर दिया; ह—भूतकाल में।

समस्त विश्व के शासक के रूप में सम्राट भरत के पास महान् राज्य एवं अजेय सैनिकों का ऐश्वर्य था। उनके पुत्र तथा उनका परिवार उन्हें उनका जीवन प्रतीत होता था। किन्तु अन्ततः उन्होंने इन सबों को आध्यात्मिक प्रगति में बाधक समझा अतएव उन्होंने इनका भोग बन्द कर दिया।

तात्पर्य : महाराज भरत के पास प्रभूत ऐश्वर्य, सैनिक, पुत्र, पुत्रियाँ तथा भौतिक भोग की सारी वस्तुएँ थीं, किन्तु जब उन्हें यह लगा कि ऐसा सारा ऐश्वर्य आध्यात्मिक प्रगति के लिए व्यर्थ है तो उन्होंने भौतिक भोग से विरक्ति ग्रहण कर ली। वैदिक सभ्यता में एक विशेष आयु के बाद मनुष्य को महाराज भरत की ही तरह भौतिक ऐश्वर्य का भोग त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का आदेश है।

तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसम्मताः ।
जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी (भरत की); आसन्—थीं; नृप—हे राजा परीक्षित; वैदर्भ्यः—विदर्भ की कन्याएँ; पत्न्यः—पत्नियाँ; तिस्रः—तीन; सु-सम्मताः—अत्यन्त मनोहर तथा उपयुक्त; जघ्नुः—मार डाला; त्याग-भयात्—त्यागे जाने के भय से; पुत्रान्—अपने पुत्रों को; न अनुरूपाः—अपने पिता की तरह न होने से; इति—इस तरह; ईरिते—विचार करते हुए।

हे राजा परीक्षित, महाराज भरत की तीन मनोहर पत्नियाँ थीं जो विदर्भ के राजा की पुत्रियाँ थीं। जब तीनों के सन्तानें हुईं तो वे राजा के समान नहीं निकलीं, अतएव इन पत्नियों ने यह सोचकर कि राजा उन्हें कृतघ्न रानियाँ समझकर त्याग देंगे, उन्होंने अपने अपने पुत्रों को मार डाला।

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; एवम्—इस प्रकार; वितथे—परेशान होकर; वंशे—सन्तान उत्पन्न करने में; तत्-अर्थम्—पुत्र प्राप्ति के लिए; यजतः—यज्ञ सम्पन्न करते हुए; सुतम्—एक पुत्र; मरुत्-स्तोमेन—मरुत्स्तोम यज्ञ करने से; मरुतः—मरुत्गण देवता; भरद्वाजम्—भरद्वाज को; उपाददुः—भेंट कर दिया।

सन्तान के लिए जब राजा का प्रयास इस तरह विफल हो गया तो उसने पुत्रप्राप्ति के लिए मरुत्स्तोम नामक यज्ञ किया। सारे मरुत्गण उससे पूर्णतया सन्तुष्ट हो गये तो उन्होंने उसे भरद्वाज नामक पुत्र उपहार में दिया।

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमुपासृजत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-वत्न्याम्—गर्भवती; भ्रातृ-पत्न्याम्—भाई की पत्नी से; मैथुनाय—संभोग की इच्छा से; बृहस्पतिः—बृहस्पति नामक देवता; प्रवृत्तः—प्रवृत्त; वारितः—मना किया गया; गर्भम्—गर्भ के भीतर के पुत्र को; शप्त्वा—शाप देकर; वीर्यम्—वीर्य; उपासृजत्—स्खलित किया।

बृहस्पति देव ने अपने भाई की पत्नी ममता पर मोहित होने पर उसके गर्भवती होते हुए भी उसके साथ संभोग करना चाहा। उसके गर्भ के भीतर के पुत्र ने मना किया लेकिन बृहस्पति ने उसे शाप दे दिया और बलात् ममता के गर्भ में वीर्य स्थापित कर दिया।

तात्पर्य : इस संसार में संभोग की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि देवताओं के गुरु तथा अत्यन्त पंडित बृहस्पति ने भी अपने भाई की गर्भवती पत्नी के साथ संभोग करना चाहा। जब उच्चतर देवताओं के समाज में ऐसा हो सकता है तो मानव समाज के विषय में क्या कहा जाये? संभोग की इच्छा इतनी प्रबल है कि

बृहस्पति जैसा विद्वान व्यक्ति भी विचलित हो सकता है।

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तुस्त्यागविशङ्किताम् ।
नामनिर्वाचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तम्—नवजात शिशु को; त्यक्तु-कामाम्—त्यागने की इच्छा से; ममताम्—ममता को; भर्तुः त्याग-विशङ्कितम्—अवैध पुत्र उत्पन्न करने के कारण अपने पति द्वारा छोड़े जाने से अत्यन्त भयभीत; नाम-निर्वाचनम्—नामकरण संस्कार; तस्य—उस बालक का; श्लोकम्—श्लोक; एनम्—इस; सुराः—देवतागण ने; जगुः—घोषित किया।

ममता अत्यन्त भयभीत थी कि अवैध पुत्र उत्पन्न करने के कारण उसका पति उसे छोड़ सकता है अतएव उसने बालक को त्याग देने का विचार किया। लेकिन तब देवताओं ने उस बालक का नामकरण करके सारी समस्या हल कर दी।

तात्पर्य : वैदिक शास्त्र के अनुसार जब भी बालक उत्पन्न होता है तो जातकर्म तथा नामकरण संस्कार किये जाते हैं जिनमें विद्वान ब्राह्मण ज्योतिषगणना के अनुसार कुण्डली बनाते हैं। किन्तु ममता ने जिस पुत्र को जन्म दिया था वह बृहस्पति द्वारा उत्पन्न अवैध पुत्र था क्योंकि ममता तो उतथ्य की पत्नी थी, किन्तु बृहस्पति ने बलपूर्वक उसे गर्भवती बना दिया था। अतएव बृहस्पति को *भर्ता* बनना पड़ा। वैदिक संस्कृति के अनुसार पत्नी पति की सम्पत्ति होती है और अवैध मैथुन द्वारा उत्पन्न पुत्र *द्वाज* कहलाता है। हिन्दू समाज में ऐसे पुत्र को *दोगला* कहा जाता है। ऐसी स्थिति में बालक को उचित संस्कार द्वारा नाम दे पाना कठिन होता है। इसीलिए ममता चिन्तित थी, किन्तु देवताओं ने बालक को एक उपयुक्त नाम भरद्वाज प्रदान किया जिसका अर्थ था कि यह बालक अवैध रूप से उत्पन्न है और इसका पालन ममता तथा बृहस्पति दोनों को करना चाहिए।

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

मूढे—हे मूर्ख स्त्री; भर—पालन करो; द्वाजम्—दोनों के बीच अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न; इमम्—इस बालक को; भर—पालो; द्वाजम्—अवैध जन्म लेने के कारण; बृहस्पते—हे बृहस्पति; यातौ—छोड़कर चले गये; यत्—क्योंकि; उक्त्वा—कहकर; पितरौ—माता पिता दोनों; भरद्वाजः—भरद्वाज नामक; ततः—तत्पश्चात्; तु—निस्सन्देह; अयम्—यह बालक।

बृहस्पति ने ममता से कहा, ''अरी मूर्ख! यद्यपि यह बालक अन्य पुरुष की पत्नी और किसी

दूसरे पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुआ है, किन्तु तुम इसका पालन करो।'' यह सुनकर ममता ने उत्तर दिया, ''अरे बृहस्पति, तुम इसको पालो।'' ऐसा कहकर बृहस्पति तथा ममता उसे छोड़कर चले गये। इस तरह बालक का नाम भरद्वाज पड़ा।

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

चोद्यमाना—प्रोत्साहित किये जानेपर (कि बालक को पालो); सुरैः—देवताओं द्वारा; एवम्—इस प्रकार; मत्वा—मानकर; वितथम्—निष्प्रयोजन; आत्मजम्—अपने पुत्र को; व्यसृजत्—त्याग दिया; मरुतः—मरुत्गण ने; अबिभ्रन्—बच्चे का पालन किया; दत्तः—दिया गया; अयम्—यह; वितथे—निराश; अन्वये—महाराज भरत का वंश।

यद्यपि देवताओं ने बालक को पालने के लिए प्रोत्साहित किया था, किन्तु ममता ने अवैध जन्म के कारण उस बालक को व्यर्थ समझ कर उसे छोड़ दिया। फलस्वरूप, मरुत्गण देवताओं ने बालक का पालन किया और जब महाराज भरत सन्तान के अभाव से निराश हो गए तो उन्हें यही बालक पुत्र-रूप में भेंट किया गया।

तात्पर्य : इस श्लोक से यह समझ में आता है कि जिन्हें स्वर्गलोक में त्याग दिया जाता है उन्हें इस धरालोक में अत्यन्त उच्च परिवारों में जन्म लेने का अवसर दिया जाता है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''पूरु का वंश'' नामक बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।